असम के जनसमुदाय पर श्रीमंत शंकरदेव का प्रभाव

अखिल चन्द्र कलिता

भक्ति का प्रारंभ कब और कहाँ-कहाँ बिखरे पड़े हैं, इसको लेकर विद्वानों और विचारकों में काफी मतभेद हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भक्ति आंदोलन को पराजित मनोवृति का देन मानते थे। लेकिन यह भारतीय धर्म और कर्मभूमि की एक उपज है। वास्तव में बौद्ध धर्म और जैन धर्म में जो विकृति आई, उन्होंने भक्ति और धर्म के नाम पर समाज को रूढ़ियों और अंधविश्वास के गर्त में धकेल दिया था। अतः इन भक्तों का लक्ष्य समाज को एक परिष्कृत धार्मिक मार्ग दिखाना था। कालांतर में वैष्णव भक्ति के अंतर्गत विष्णु के अवतार राम की भक्ति का प्रचार-प्रसार रामानंद की परंपरा में हुआ। वहीं कृष्णभक्ति का देशव्यापी प्रचार-प्रसार वल्लभाचार्य की शिष्य परंपरा में अष्टछाप के कवियों द्वारा हुआ। जब देश के विभिन्न भागों में भक्ति के कारण जागरण आने लगा था उस समय देश का उत्तरपूर्वी भाग इससे अछूता-सा था। देश के इस प्रान्त के अपने लोग धर्म और साधना को लेकर पथभ्रष्ट हो रहे थे। शंकरदेव से पूर्व असम में शैव मत, शाक्त मत और वैष्णव मत का प्रचार-प्रसार हो चुका था। ऐसा माना जाता है कि द्वितीय शताब्दी में राजकुमार नरकासुर ने यहाँ आर्यों का उपनिवेश बसाया था। नरकासुर ने ही शाक्त धर्म का प्रचार करके देवी पूजन का शुभारम्भ किया था। दसवीं से तेरहवीं सदी तक इस धर्म का रूप उग्र होता गया। बलि-प्रथा, तंत्र-मंत्र का प्रभाव बढ़ने लगा। बाह्याडम्बर और कर्मकांडों ने जनता को भ्रमित कर रखा था। ऐसी परिस्थिति को देखकर शंकरदेव बहुत चिंतित हुए और धर्म को परिष्कृत और परिमार्जित करने के लिए नई धार्मिक चेतना को जागृत किए। इसी दौरान वे भारत भ्रमण के लिए निकल पड़े। उन्होंने बारह वर्षों तक भारत भ्रमण किया। काशी, मथुरा, वृंदावन, पूरी, गया आदि तीर्थों पर गये तथा विभिन्न संतों के साथ बैठकर ज्ञान का आदान प्रदान किया। इस समय तक देश के कुछ भागों में वैष्णव धर्म का व्यापक प्रभाव पड़ चुका था। इसी सर्वभारतीय वैष्णव मत ने श्रीमंत शंकरदेव को विशेष प्रभावित किया।

संपूर्ण उत्तर पूर्वांचल में भक्ति आंदोलन के नारों का प्रचार-प्रसार करने में शंकरदेव का महत्वपूर्ण योगदान है। असम की विषम सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के बीच लोगों को वैष्णव धर्म का सन्देश दिया। अहिंसा और गुरु को भक्ति साधन का प्रधान अंग माना गया है। गीता में निष्काम कर्म, ज्ञान और भक्ति के समन्वय पर बल दिया गया है। जिससे लोक कल्याण की भावना को प्रश्रय मिला। इसमें ब्रहम के सगुण और निर्गुण दोनों रूप स्वीकार्य है। इसका आधारभूत ग्रंथ श्रीमद्भागवत है। इन्हीं सिद्धांतों को लेकर शंकरदेव ने महापुरुषीया धर्म या एकशरणीया धर्म का प्रवर्तन किया। उन्होंने बहुदेववाद के भ्रम से जनमानस को निकालने हेतु कृष्णभक्ति का मार्ग दिखाया। श्रीकृष्ण को पूर्ण ब्रहम

माना और कृष्ण भक्ति को छोड़कर तीर्थ, व्रत, यज्ञादि वाह्याडंबरों को विडम्बना कहा हैं। यह कर्मकांड हरिनाम और हरि स्मरण के सामने फीके पड़ जाते है।

"यत महायज्ञ दान / तप जप तीर्थ स्नान... केहो नोके आक सरि / डाके बोला हरि-हरि..."

शंकरदेव ने भक्ति का द्वार समाज के सभी वर्णों और वर्गों के लोगों के लिए खोल दिया। चांडाल भी हरिनाम लेकर मुक्ति योग्य बनता है। उन्होंने सामाजिक जीवन में भी जाति प्रथा और छुआछूत को नहीं माना।

'ब्राह्मणर चांडालर निबिसारि कुल / दातात चोरत जेन दृष्टि एक तुल

नीचत साधुत यार भैल एक ज्ञान / तहाके से पंडित बुलिम सर्वजन'

अहिंसा, घृणा, ईर्ष्या आदि मनोविकारों का पूरी तरह से उन्मूलन होने पर ही ईश्वर की प्राप्ति होती है। इसलिए उन्होंने स्वंय को कृष्ण किंकर कहा है। उनमें सर्वजन हिताय की भावना प्रबल रूप में देखी जाती है। उनकी भक्ति भावना दास्य भक्ति को प्रेरणा देती है।

"कृष्णर किंकरे कहे शंकर सम्पति/ बोला हरि हरि सबै होके सद्गति"

शंकरदेव का कृष्ण राखविहारी कम, लोकरंजक और लोकरक्षक अधिक है। इसी कारण उन्होंने अपनी भक्ति में राधा को स्थान नहीं दिया है। दूसरी बात यह भी हो सकती है कि भागवत में राधा नामक कोई चरित्र न होने के कारण उन्होंने ऐसा किया हो। इसका तात्पर्य ऐसा नहीं कि शंकरदेव के मन में नारी के प्रति आदर की भावना नहीं थी। नारी के प्रति उनकी भावना बहुत उदार थी। उन्होंने स्त्री को भी ईश्वर भक्ति का अधिकारी माना है। इस महामानव ने मनुष्येतर प्राणियों के प्रति भी समभाव की भावना व्यक्त की है। शंकरदेव ने सभी प्राणियों में ईश्वर का वास माना है।

कुकुर चंडाल गर्दभरो आत्मा राम। जानिया सबाको परि करिबा प्रणाम...

कुत्ता, चंडाल तथा गधे की आत्मा में भी राम हैं। नागा जाति का नरोत्तम आते, गारो का गोविन्द आते, कैवर्त का जयहरि आते उच्चकोटि के भक्त गुरु थे। यदि शंकरदेव द्वारा बनाई गयी यह व्यवस्था आज तक बरकरार रहती तो असम एक आदर्श राज्य बना रहता। इसाई मिशनरियों के चंगुल में फँसने से पूर्व

तक नागा, गारो और भूटान आदि के हजारों लोग एक शरणीय वैष्णव मत को मानते थे परन्तु कालांतर में धर्म परिवर्तन का प्रभाव इन पर पड़ा। इस तरह वे लोक धर्म के प्रवर्तक थे जिन्होंने समाज के निचले तबके के लोगों को विशेष रूप से अपनाया। शंकरदेव के अपने मत को लेकर जगह-जगह सत्रों की प्रतिष्ठा हुई। जहां केवल धर्म चर्चा ही नहीं होती, अपितु अन्य सामुदायिक कलाप भी होते हैं। शंकरदेव की विचार क्रिया- धाराएँ सिर्फ असम में ही सीमाबद्ध नहीं है। बारह वर्षों के भारत भ्रमण 'ने उनकी विचार धाराओं को व्यापकता प्रदान की। अतः उनके काव्य में राष्ट्रीयता की भावना होना स्वाभाविक है। उनके कीर्तनों में बार बार भारत देश का वर्णन मिलता है। वे भारत में जन्म होना पुण्य का फल मानते है। इस प्रकार महापुरुष शंकरदेव के चार रूप दृष्टिगत होते है, जैसे- साहित्यकार, धर्म-प्रचारक, समाज सुधारक, संस्कृति सेवक। साहित्यकार के रूप में महाकवि, नाटककार, गीतकार, आलोचक थे। धर्म प्रचारक के रूप में उन्होंने एक शरणीय वैष्णव मत के द्वारा एक परिष्कृत भक्ति मार्ग का प्रवर्तन किया। समाज सुधारक के रूप में धार्मिक सामाजिक रूढ़ियों का बहिष्कार किया। संस्कृति सेवा के अंतर्गत तो उनका समाज सुधारक और धर्म प्रचारक वाला रूप आता है। उन्होंने अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए पर्याप्त साहित्य की रचना की है। अनेक नाटक लिखकर उनका मंचन और निर्देशन भी किया। उनकी भाषा ब्रज, अवधि, मैथिली और असमिया भाषाओं के मिश्रण से बनी ब्रजबुलि है, जो राष्ट्रीयता का स्वर बुलंद करती है। इस दृष्टि से वे एक महान जातीय संगठक कहे जा सकते हैं। इनकी विद्वता एवं प्रतिभा संपूर्ण भक्ति आंदोलन के अन्य महात्माओं के समकक्ष ठहरती है। महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव के दर्शन, सृष्टि और विचारों का आज भी पालन हो रहा है और सदैव होता रहेगा।